REVIEW OF RESEARCH
ISSN: 2249-894X
IMPACT FACTOR : 5.7631(UIF)
VOLUME - 13 | ISSUE - 10 | JULY - 2024

उषा प्रियंवदा की 'ज़िन्दगी और गुलाब के फूल'(कहानी संग्रह) में आधुनिकता का अध्ययन

पूजा तिवारी
शोधार्थी हिन्दी
अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय, रीवा (म.प्र.)

डॉ. क्रांति मिश्रा
प्राध्यापक हिन्दी
शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, सतना (म.प्र.)

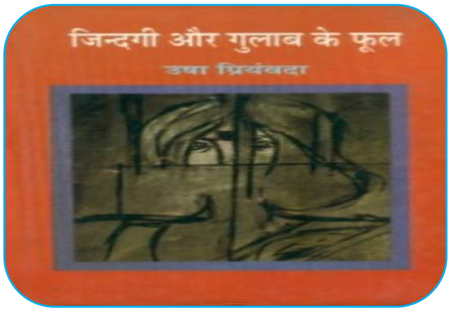

सारांश –

'ज़िन्दगी और गुलाब के फूल' (कहानी संग्रह) एक महत्वपूर्ण हिंदी कहानी है जो समाज, संस्कृति और आधुनिकता के विभिन्न पहलुओं को छूती है। इस कहानी में समाज की विभिन्न समस्याओं और स्थितियों का विवेचन किया गया है। इसमें व्यक्तिगत और सामाजिक स्तर पर जीवन की समस्याओं को उठाने का प्रयास किया गया है, जैसे कि प्रेम, पराया–धन और उसके परिणाम। इन समस्याओं के माध्यम से, आधुनिकता के विभिन्न आयाम और उनका समाधान भी प्रस्तुत किया गया है। कहानी में नारी की भूमिका भी महत्वपूर्ण है। उसके स्वतंत्रता, सम्मान और समाज में अपनी पहचान बनाने की प्रेरणा को प्रस्तुत किया गया है। इसके माध्यम से कहानी आधुनिक भारतीय नारी के विचारों और उसके समाज में स्थान को समझाने का प्रयास करती है। इस कहानी में धर्म और सांस्कृतिक मान्यताओं का भी महत्वपूर्ण रोल है। यह दिखाता है कि कैसे आधुनिक समय में भी इन मान्यताओं का महत्व बना रहता है और उनके प्रति समझौते और परिवर्तन की आवश्यकता क्यों होती है। इस प्रकार, जिन्दगी और गुलाब के फूल कहानी में आधुनिकता का अध्ययन करते समय हमें समाज, सम्बंध और सांस्कृतिक मान्यताओं के विभिन्न पहलुओं को समझने का मौका मिलता है। इसके माध्यम से हम अपने आसपास के व्यक्तियों और समाज के विचारों को भी समझ सकते हैं और उनमें सुधार लाने के लिए प्रेरित हो सकते हैं।

मुख्य शब्द – जिन्दगी, गुलाब, फूल, समाज, संस्कृति एवं आधुनिकता।

प्रस्तावना –

'ज़िन्दगी और गुलाब के फूल' कहानी में नायक सुबोध ने अपने अफसर की अपमानजनक बात सुनकर आत्म–सम्मान की रक्षा के लिए नौकरी से इस्तीफा दे दिया था। ''जिन्दगी ने उसे भी गुलाब के फूल दिये थे, लेकिन उसने स्वयं ही उन्हें ठुकरा दिया।''[1] अब उसकी ज़िन्दगी में कांटें ही काटें बचे थे। उसने लाख कोशिश की पर मशीनीकरण के कारण उसे कहीं भी नौकरी नहीं मिली। आदमी जब कमा नहीं सकता तब उसमें हीनता बोध उपजता है। वह अपनी पुरानी प्रेमिका से कहता है – ''मैं ज़िन्दगी में फेलियर हूँ, कम्पलीट फेलियर। कुछ नहीं कर सका। जैसे मेरी ज़िन्दगी में अब फुल स्टॉप लग गया है।[2] कारण वह जान गया था कि प्यार से भी बड़ी एक और आग होती है, भूख की, पेट की। वह आग धीरे–धीरे सब कुछ लील लेती है। इसी कारण उसका

प्यार छिन लिया। उसे अब उसकी ज़िन्दगी बोझ–सी लगती है। किसी समय शोभा को लेकर उसने रंग–भरे स्वप्न लिए हैं और वह उसके जीवन में गुलाब–गन्ध बनकर आयी है। उसके पिता सुबोध के साथ उसकी शादी करने के लिए तैयार थे। परन्तु नौकरी के चले जाने और दुबारा न मिलने के कारण उसके पिता ने शोभा की शादी कहीं और कर दी।

कई साल में घिसट घिसटकर बी.ए., एल.टी. कर सुबोध की बहन मास्टरनी बन गयी। अब घर के सारे फैसले लेने का अधिकार उसे हो गया। सुबोध के कमरे की हर चीज धीरे–धीरे वृंदा के कमरे में जाने लगी। सबसे पहले उसकी मेज चली गयी। उसने सीधे कह दिया कि वह अब मेज का क्या करेगा? उसे काम पड़ सकता है। वह कह नहीं सका कि अध्यापिका होने से कोई पुस्तकों का प्रेमी नहीं बन सकता। उस पर वृंदा के जूड़े के कांटे, नेल पॉलिस की शीशी और गर्द भरी किताबें पड़ी रहती थी। कुछ दिनों के बाद माँ ने ही उसकी अलार्म की घड़ी वृंदा को दे दी। कारण वृंदा को स्कूल जाने में देर न हो। पहले अखबार सुबोध के कमरे में आता था कि वह उसे छू ले। पर जब से वह बेकार हो गया, अखबार वृंदा के कमरे में पहले जाने लगा, सुबोध को हीनता का बोध हुआ और उसने अखबार पढ़ना ही छोड़ दिया।

एक दिन उसे अपना कमरा खाली लगा। उसने देखा कि उसके कमरे का कालीन निकाल दिया गया है और किनारे पर रखी हुई मेज भी नहीं है। पूछने पर पता चला वृंदा की सहेलियाँ आने वाली थी, अतः उसके कमरे में चला गया। उसकी सारी चीजें वृंदा के कमरे में जा चुकी थीं, सबसे पहले पढ़ने की मेज, फिर घड़ी, आराम–कुर्सी और अब कालीन और छोटी मेज भी। पहले अपनी चीज वृंदा के कमरे में सजी देख उसे कुछ अटपटा लगता था, पर अब वह अभ्यस्त हो गया था। यद्यपि उसका पुरुष हृदय घर में वृंदा की सत्ता स्वीकार न कर पाता था।' परन्तु वह मजबूर था। उसके पास कमाई का कोई जरिया नहीं था। इसलिए अब उसके कन्धे झुक गये थे। उसके चेहरे पर विषद और चिन्ता की रेखाएँ गहरी हो गयी थी। कई बार वह देख तो अपने माँ रहता था पर उसकी आँखें हजारों मील दूर थी। मौन रहकर अपने आप से लड़ने के अतिरिक्त वह कुछ नहीं कर सकता था। माँ के लिए भी वह एक अनजान पुरुष हो गया था। घर से कब जाता है, कब आता है, क्या करता है, माँ ने पूछना छोड़ दिया था। माँ अब जान गयी थी कि निकम्मे पुत्र को उसे पालना है। दोनों एक दूसरे की व्यथा को जानते थे पर किया कुछ नहीं जा सकता था।

दोनों एक–दूसरे की गोपन व्यथा से परिचित थे। उन दोनों में एक मूक समझौता हो गया था। माँ ने अब उसकी नौकरी के विषय में पूछना ही छोड़ दिया था। बेटे को नौकरी नहीं मिल रही थी और बेटा अपनी छोटी बहन की शादी नहीं कर पा रहा था। पहले तो कभी–कभार ये बातें कहीं भी जा सकती थी अब वह भी नहीं। माँ ने बेटे का ख्याल रखना भी छोड़ दिया था। वह कभी रात के दस–ग्यारह बजे आता था और सुबह देर से उठता था। दोपहर को फिर गायब हो जाता था। अतः अब घर वृंदा की सुविधा के अनुसार चलता था। सुबह उसे जल्दी उठना होता था। अतः रात को वह जल्दी खाना खाकर सो जाती है। सुबोध देर से आता था, देर से उठता था। अतः दोनों समय उसे ठण्डा खाना मिलता था। माँ भी अधिक ध्यान नहीं दे पाती थी।

विश्लेषण –

एक छोटी–सी घटना के कारण सुबोध का हीनताबोध और गहराता है। माँ ने उसे सब्जी लाने बाजार भेजा था। कमीज उसकी फटी हुई थी और पूरी वेशभूषा भी नौकरों से मिलती जुलती थी। उसकी ही बगल में एक पहाड़ी नौकर सब्जी खरीद रहा था। उसके चिकट बालों से तेल चू रहा था और उसके मुँह से बीड़ी का कड़वा धुआँ निकल रहा था। वह भी वैसा ही थैला लिए हुए था। घटना बहुत साधारण थी पर उसे लगा कि उसकी दशा नौकर जैसे हो गयी है। घर की साग–सब्जी लाना बुरा नहीं है पर ये उसकी अपनी समझ थी। तब उसे लगा उसे नौकरी नहीं छोड़नी चाहिए थी। तांगे वाले को रुपया भुनाकर बारह आने देना भी उसकी जान पर आ रहा था। वह अपना हीनता–बोध मिटाने बाहर ही समय बिताता है। कारण घर पर शोभा आयी थी। वह उसके सामने नहीं जाना चाहता था। पर जब घर गया तो शोभा को घर तक पहुंचाने की जिम्मेदारी उस पर डाली गयी। किसी समय वह शोभा की आँखों में आँखें डालकर बात करता था। अब हीनता बोध के कारण उसकी नजर उसके चेहरे के बजाए पैरों पर आ गयी थी। अब उसे शोभा की साड़ी का बार्डर दिखाई देता रहा, जोगिया बार्डर, जिस पर मोर और तोते कढ़े हुए थे। कभी–कभी एड़ियाँ भी झलक उठती, चिकनी एड़ियाँ।[3]

उसका चेहरा देखने की हिम्मत होती। शोभा बात कर रही थी पर वह जवाब नहीं दे पा रहा था। हीनता बोध ने उसे बिटर (कटु) बना दिया था।

एक और प्रसंग से उसका हीनताबोध उभर आता है। अपने सारे कपड़े उसने धोबी को देने के लिए इक ट्ठे किए। पीठ पर फटी हुई कमीज पर कोट पहन लिया। वह कुछ देर के लिए बाहर गया था तब तक वृंदा ने उसके सारे कपड़े वैसे ही पड़े रहने दिया। धुलने नहीं दिए। लौटने पर माँ को जिस प्रकार डाँटता है उससे उसके हीनता बोध का पता चलता है। यथा–''तुम माँ–बेटी चाहती क्या हो? आज मैं बेकार हूँ, तो मुझ से नौकरों–सा बर्ताव किया जाता है। लानत है ऐसी जिन्दगी पर।... मुझे मुफ्त का नौकर समझ लिया है? पहले कभी तुम ने मुझे यह सब काम करते देखा था।''[4] परन्तु चिल्लाने से कोई फायदा तो था नहीं। घर के काम करना यानी नौकरों का काम करना नहीं है। उसकी घर में कद्र इसलिए नहीं थी क्योंकि वह निकम्मा था। अकेले लड़की घर चला रही थी और यह बेकार के अहम ओढ़े हुए था।

वह क्रोध में घर से निकलता है। ''अपनी छटपटाहट में उसके अन्दर एक तीव्र विध्वंसक प्रवृत्ति जाग उठी थी। उसका मन चाह रहा था कि जो कुछ भी सामने पड़े, उसे तहस–नहस कर डाले।'' ऐसे समय वह एक साइकिल सवार से टकरा जाता है। उसकी कोहनी छिल गयी, खून टपकने लगा। पैरों में भी पीड़ा होने लगी। उसे इस दर्द से आत्म–पीड़न का संतोष हुआ। वह चाह रहा था कि उसे दर्द मिले। पर ऐसा होता नहीं। जब वह घर लौटा तो उसकी थाली उसके कमरे में रखी थी। किसी ने भी नहीं पूछा कि इतनी देर से क्यों आये? लंगड़ा क्यों रहे हो? आधुनिकता का अभिशाप है बेरोजगारी और बेरोजगार के प्रति किसी को भी सहानुभूति नहीं होती।

'चाँद चलता रहा' कहानी की नायिका का आचरण भारतीय नैतिकता के हिसाब से भले ही गलत हो परन्तु उसके जिन्दगी में घटी घटना के आधार पर खरा उतरता है। जिस शरीर की पवित्रता को बचाने के लिए उसे भावी पति की जान चली गयी, उसी शरीर से बदला लेने वह जिस तिस को वह प्रदान करती है। उसकी मानसिकता देखने के बाद पाठक उसे कुलटा या फ्लर्ट नहीं कह सकते। आज की दुनिया में सम्बन्धों में ठण्डापन आता जा रहा है। विदेशी स्त्री से विवाह करने पर भारतीय पुरुष को जो निराशा मिली उसके फलस्वरूप वह भारतीय प्रेमिका की ओर मुड़ता है परन्तु वह उसकी हो नहीं पाती। तीसरे व्यक्ति की भूमिका वाली कहानियों में अमेरिका के उन बातों का संकेत है, जिसमें युवा जिस्म पाने की होड़ है। अपने ही घर में 'अजनबी' हो जाना आज के पिता की त्रासदी है।

'वापसी' के गजाधरबाबू की यही त्रासदी है। पूरी ज़िन्दगी भर कमाई करते रहे, परन्तु रिटायर होकर जब वे घर लौटे तो वे अपने ही घर में अजनबी बने रहे। फैसले लेने के ही नहीं अपितु गजाधरबाबू को ही परिवार ने नकार दिया गया। उनका अपने ही घर से निष्कासित होना पुरानी पीढ़ी की हार है। 'अकेलापन' आधुनिक जिन्दगी का अभिशाप बन गया है, जो कि आधुनिकता के विरोध में है। मनुष्य अब प्राकृतिक मृत्यु के प्रति विशेष चिंतित नहीं है परन्तु अप्राकृतिक मृत्यु के प्रति चिंतित है। पश्चिम में विश्वयुद्धों ने सम्पूर्ण विचारधारा को बदल दिया परन्तु हमारे यहाँ जगह–जगह संस्कार आड़े आते हैं।

आधुनिकता के कारण आज समाज में काफी परिवर्तन दिखाई दे रहे हैं। जैसे – स्त्री–पुरुषों के सम्बन्धों में नया सन्तुलन, इकाई के रूप में उभरती स्त्री की स्वीकृति, परिवार का विघटन, धर्मवादी संस्थाओं का परित्याग, चरित्र नायकों की अनुपस्थिति, निर्णय की स्वतंत्रता, एक–दूसरे के जीवन में हस्तक्षेप की अनुपस्थिति, अन्धानुकरण के प्रति वैराग्य, सैक्स सम्बन्धों में पाप–बोध नहीं, आज नारी न सती है, न वेश्या, बस नारी है। सैक्स टैबू या वर्जित प्रदेश नहीं है। आधुनिकता बोध के नाम पर संभोग, होमोसेक्सुअलिटी, लैस्बियनिज्म सैटिज्म और समागम के विभिन्न आसनों का खुलकर वर्णन किया जा रहा है। आधुनिकता के नाम पर अनुभव की प्रमाणिकता के खोखले नारे कई कहानियों में लगाये गये हैं। आधुनिकता बोध के कारण कहानी से चरित्र नायक गायब हो गये। उनके बदले सामान्य मनुष्य अवतरित हुए, वे भी अपनी सारी कमजोरियों के साथ आधुनिक बोध के कारण कथा–साहित्य में यथार्थ को जैसे के तैसे रूप में प्रस्तुत किया है। आज की परिस्थितियाँ कुछ ऐसी हो गयी है कि विश्वास के स्थान पर संदेह जागृत हो चुका है। आज का आदमी चिन्ताग्रस्त है। प्रतीक्षा से ऊबा हुआ है। भीड़ में भी वह अकेला है। आज सत्य–असत्य, नैतिक–अनैतिक, पाप–पुण्य, मूल्य और वर्जनाओं के अर्थ बदल गये हैं। नारी कामकाजी होने के नाते किसी पर निर्भर नहीं है। वह अपने फैसले खुद लेती है। इसलिए पुरुष सत्ता डगमगा गयी है। सारी नैतिक संकल्पना आर्थिक स्थिति से जुड़ी होने से पति–पत्नी के

रिश्तों में दरार आ गयी है। कई बार पत्नी का व्यवहार देख पुरुष घर छोड़कर जा रहा है। उसे संस्कारों के कारण झुंझलाहट होती है परन्तु लाचारी, परवशता, विवशता के कारण वह घर छोड़कर जा भी नहीं सकता। विवाह अब युवकों को मिनिगलेस रस्म लगती है। विवाह विच्छेद को आज तटस्थ भाव से देखा जा रहा है। स्थापित मान्यताओं के विरोध में जाकर नारियाँ अब कई पुरुषों से अपने सम्बन्ध स्थापित कर रही हैं। आधुनिक बोध के कारण आज परिवार का ढाँचा बदल गया है। लड़की कमाऊ और लड़का निकम्मा हो तो घर में लड़की की इज्जत होगी, फैसले वह लेती है। आज कोई पिता अपनी पुत्री को प्रेम–विवाह करने से रोक नहीं सकता। विवाह, प्रेम और सेक्स की व्याख्याएँ अब बदल गयी हैं। विवाह के साथ जुड़ी प्रामाणिकता, पवित्रता आज बकवास लगती है। आज चारों ओर की स्थितियाँ कुछ ऐसी हैं कि मनुष्य में अकेलापन, उदासीनता, अजनबीपन, अनास्था, अलगाव, घुटन आदि की अनुभूति विशेष रूप से हो रही है। संत्रास, आत्महत्या, मृत्युबोध आदि का एहसास उसे हो रहा है। वह जान गया है कि इससे छुटकारा नहीं। प्रेम, स्नेह आदि रागात्मक भावनाओं का लोप होने से व्यक्ति में उदासीनता बढ़ गयी है। व्यक्तियों के आपसी रिश्ते यांत्रिक और कृत्रिम होने लगे हैं। घर में रहकर भी घर से जुड़ा नहीं जा रहा है। धीरे–धीरे भारतीय साहित्य में आधुनिक बोध का प्रभाव बढ़ रहा है, जो विदेश में रहते हैं उनके साहित्य में तो अधिक।

उषा प्रियंवदा जी ने अपनी जीवन की शुरुआती दौर में कुछ ऐसी कहानियाँ लिखी हैं जिसमें आधुनिकता बोध नहीं है, जिनमें से ''पैरम्बुलेटर'' भी एक है। इस कहानी में एक मध्यवर्गीय परिवार की महिला कालिन्दी के वैवाहिक जीवन के बाद अपने अगले बच्चे के लिए पैरम्बुलेटर खरीदना चाहती है तथा खरीद भी लेती है परन्तु उसका बच्चा पैदा होते ही मर जाता है। उसकी ननद उस गाड़ी को अपने बच्चे के लिए ले जाना चाहती है परन्तु वह उसे नहीं देती। इस तरह बरसों बीत जाते हैं। वह माँ नहीं बन सकती। इस बीच उसके पति की नौकरी छूट जाती है। आर्थिक स्थिति इतनी खराब हो जाती है कि नवजात शिशु की दवा के लिए वह पैरम्बुलेटर बेच देती है। कहानी का अंत लेखिका ने बड़ा हृदयविदारक लिखा है – बेगारी के इस जमाने में लेखिका ने नायक को कहीं नौकरी नहीं दिलवायी और न अपनी बहन के साथ कालिन्दी ने खरीदी हुई पैरम्बुलेटर दे दी। इस कहानी में आधुनिकता का कोई पहलू नहीं है।

एक और कहानी है 'कच्चे धागे' की कहानी हमें मन्नू भण्डारी की 'सोमा बुआ' की याद दिलाती है। कुन्तल अपने सम्बन्धों के कच्चे धागों से पड़ोस की जीजी के भैया के साथ अपने गठबन्धन की सोचती है। वह भूल गयी कि वह खपरैल के घर में रहती है। उसके लिए सिद्धार्थ अप्राप्ये था। फिर भी कुन्तल के एक हितैषी ने बात चलायी परन्तु चाची ने यह कहा कि उसे तो लड़की खूबसूरत चाहिए। कुन्तल तो साधारण थी। लड़की भी साधारण और घर भी साधारण तब ऐसे ख्वाब बुनने से लाभ क्या? भले ही कुन्तल ने अपनी धोती पीले रंग की रंगी थी, चूड़ियाँ खरीदी थी परन्तु सपनों की तरह उन्हें भी बिखरना ही था। इस कहानी में सिर्फ सुधारवादी शब्द आया है। पर यह सुधारवाद नाम मात्र का था। गरीब कन्या के उद्धार के लिए न था।

उषा जी ने कई तरह की कहानी लिखी है। नयी कहानी के समय में उनकी कहानियों का सृजन हुआ है। अतः नयी कहानी की सारी मान्याताएँ उनके कथा–साहित्य में है। एक लेकर लिखी है, जिसमें नायिकाएँ इसे दूर करने की कोशिश करती रही हैं। 'पूर्ति' कहानी में सुनीला नलिन को चाहती पर प्रगट रूप से कह नहीं पाती। कारण विचारों से वह उतनी आधुनिक नहीं है। किन्तु बिजली चली जाने के बाद उनका मिलना उसके भीतर के अपराध बोध को मिटा देता है।

'कँटीली छाँह' के मास्टरजी ने उम्र के बयालीस साल में अड़तीस साल की इन्द्रा से विवाह किया। बहू ने आते ही उनकी माँ को गाँव भेज दिया। मास्टरजी ने कुछ नहीं कहा। बाद में वे बराबर अपनी माँ को खर्चा भेजते रहे, छोटे भाई को इंजीनियरिंग में पढ़ाते रहे। इन्द्रा की चमक करती आँखें, मुहर्रमी सूरत और तेज जुबान किसी को भी पसन्द नहीं आयी। कुछ दिन रहकर वह नौकरी पर चली गयी। स्कूल की कड़ी मेहनत, शाम को टयूशन और फिर खाना बनाना, उन्हें ब्याह करके कौन–सा सुख मिला, कम्पाउंडर की बीवी उन्हें कभी–कभी रोटी सेंक देती थी। एक दिन उन दोनों को गलत स्थिति में कम्पाउंडर ने देख लिया और मास्टर साहब को घर खाली करना पड़ा। मास्टर साहब नागफनी की तरह लम्बे, टेढ़े और विकृत थे। उनकी जिन्दगी रेगिस्तान–सी थी। यदि जीवन की राह पर चलते हुए किसी पेड़ की छाँह में खड़े हो गए तो उसमें बुरा कुछ न था। परन्तु समाज को इसका जवाब नहीं दिया जा सकता। मास्टर साहब में यह काम भाव भी तब से जागा था जब से उनकी शादी हुई थी। किसी भी प्रकार की कोई आधुनिकता इस कहानी में नहीं है।

निष्कर्ष :

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि 'ज़िन्दगी और गुलाब के फूल' (कहानी संग्रह) में आधुनिकता का महत्वपूर्ण भूमिका है। इन कहानियों के माध्यम से समाज में बदलाव, महिला सशक्तिकरण, और समाजिक अधिकार के विभिन्न पहलुओं का अध्ययन किया जा सकता है। उषा प्रियंवदा की 'ज़िन्दगी और गुलाब के फूल' (कहानी संग्रह) अपने समय के सामाजिक परिवेश का परिचायक होते हैं, जिनमें आधुनिकता के मुद्दे और महिला परिस्थितियों के प्रति उनकी दृष्टिकोण का प्रकाश डाला गया है।

संदर्भ –

1 प्रियंवदा, उषा – ज़िन्दगी और गुलाब के फूल, पृष्ठ 120
2 प्रियंवदा, उषा – ज़िन्दगी और गुलाब के फूल, पृष्ठ 78
3 प्रियंवदा, उषा – ज़िन्दगी और गुलाब के फूल, पृष्ठ 132
4 प्रियंवदा, उषा – ज़िन्दगी और गुलाब के फूल, पृष्ठ 138